केन्द्राधिपत्य दोष : गुरु और शुक्र के सन्दर्भ में

डा. राजीव रंजन

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय

आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण, अध्ययन तथा उसके प्रभावों का अध्ययन ही ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिष के विषय विभाग का क्षेत्र अतिविस्तृत है। अतः इस शास्त्र के विषय को अनेक भेदों एवं विभागों के अन्तर्गत बांटा गया है। प्रमुख रूप से ज्योतिष के तीन ही मुख्य स्कन्ध हैं- सिद्धान्त, संहिता व होरा। भारतीय ज्योतिषशास्त्र का समस्त फलादेश जातक की जन्मपत्रिका या जन्मकुंडली पर आश्रित है। जन्मकुण्डली के बारह भाव होते हैं। लग्न से प्रारंभ करते हुए इसे क्रमशः प्रथम-द्वितीय-तृतीय आदि भावों में जाना जाता है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र में 'जन्म-कुंडली' आधारभूत आवश्यकता होती है। यह कुंडली किसी काल विशेष की आकाशीय स्थिति का मानचित्र होता है। कुण्डली में कुल बारह भाव होते हैं। ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न ग्रंथों में प्रत्येक भाव के लिए अनेक संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। तथापि कुंडली के इन भावों को क्रमशः देह, धन, पराक्रम, सुख, पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, भाग्य, राज्य, लाभ एवं व्यय नामों से जाना जाता है। लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम इन चार स्थानों को 'केन्द्र' कहते हैं। इन्हीं को 'चतुष्टय' और 'कंटक स्थान' नामों से भी जाना जाता है। भारतीय फलित ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथों में जन्मकुण्डली के कुछ भावों की 'केन्द्र' संज्ञा कही गई है। 'केन्द्र' संज्ञक भावों के विषय में महर्षि पराशर का मत है कि लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भाव केन्द्र संज्ञक हैं।[1] 'लोमश संहिता' में महर्षि लोमश का भी मत है कि लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भाव ही 'केन्द्र' संज्ञक हैं।[2] 'कृष्णीयम्' ग्रंथ के रचनाकार ने भी इन्हीं भावों को केन्द्र, चतुष्ट्य तथा कण्टक संज्ञा से निर्देशित किया है।[3] 'वृहत् पराशर होराशास्त्र' में भी केन्द्र स्थानों के शुभत्व का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रसंग में महर्षि पराशर केन्द्र स्थानों को 'विष्णु-स्थान' भी कहते हैं।[4] इन केन्द्र स्थानों को अत्यन्त शुभ माना गया है और कहा गया है कि इन स्थानों तथा स्थानाधिपतियों के योग से अशुभ भी शुभ हो जाता है।[5]

केन्द्राधिपत्य दोष कहते किसे हैं? यह जानना आवश्यक है। इस विषय पर महर्षि पराशर ने अपने लघुकाय ग्रन्थ 'लघुपाराशरी' में विशेष रूप से चर्चा की है और कहा है- "न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपाः यदि। क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्।।"[6] अभिप्राय यह है कि यदि शुभग्रह (गुरु, शुक्र, बुध व चन्द्र)[7] केन्द्र स्थानों (1,4,7,10)[8] के स्वामी हों तो वे जातक को अपना शुभ फल प्रदान नहीं करते हैं और पापग्रह

(सूर्य, मंगल, शनि)[9] भी यदि इन्हीं केन्द्र स्थानों के अधिपति हों तो जातक को पाप फल प्रदान नहीं करते। नैसर्गिक शुभ ग्रहों के रूप में बृहस्पति, शुक्र, पूर्ण चन्द्र तथा अकेला बुध इनकी गणना की गई है। स्पष्ट है कि गुरु व शुक्र के शुभत्व के लिए किसी विशिष्ट परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती है, वहीं चन्द्र तथा बुध के प्रसङ्ग में स्थिति किंचित भिन्न होती है। शुभ ग्रहों के केन्द्राधिपत्य दोष के बलाबल निर्धारण के प्रसङ्ग में महर्षि पराशर ने एक सूत्र का प्रतिपादन किया है- "केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः।"[10] अर्थात् जिन शुभग्रहों को केन्द्राधिपति होने के कारण दोष लगता है उनमें गुरु और शुक्र प्रमुख हैं। इसके बाद क्रमशः बुध तथा चन्द्रमा को केन्द्राधिपत्य दोष होता है- 'बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत् तदनु तद्विधः।'[11] लघुपराशरी ग्रन्थ के विभिन्न टीकाकारों ने गुरु तथा शुक्र के मध्य केन्द्राधिपत्य दोष के प्रसङ्ग में गुरु को केन्द्राधिपत्य दोष अधिक होना स्वीकृत किया है। हम जानते हैं कि जातक के जीवन के सर्वप्रमुख सुख तथा इष्ट विषयों का विचार गुरु व शुक्र से ही किया जाता है,[12] अतः इन दोनों में से किसी एक के भी केन्द्राधिपति होने पर जातक को उस ग्रह विशेष से संबंधित शुभ फलों की प्राप्ति में कमी बनी रहती है। अतः गुरु व शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष सर्वाधिक होता है इस सन्दर्भ में कोई मतभिन्नता नहीं है। परन्तु इन दोनों नैसर्गिक ग्रहों अर्थात् गुरु व शुक्र में से भी किस ग्रह को केन्द्राधिपत्य दोष सर्वाधिक होता है? यह विचारणीय प्रश्न है। इस सन्दर्भ में मेष लग्न से लेकर मीन लग्न अर्थात् कुल बारह लग्नों पर सूक्ष्म विश्लेषण तथा विमर्श करने पर ही उपरोक्त शङ्का का समाधान प्राप्त हो सकता है।

गुरु- गुरु चार लग्नों में केन्द्राधिपत्य दोष से पीड़ित होते हैं और ये लग्न हैं- मिथुन, कन्या, धनु और मीन। मिथुन लग्न की कुण्डली में गुरु की दोनों राशियाँ धनु तथा मीन क्रमशः सप्तम तथा दशम भाव में पड़ती हैं, अर्थात् सप्तम भाव तथा दशम भाव का अधिपति होने के कारण गुरु को केन्द्राधिपत्य दोष लगता है। इसी प्रकार कन्या लग्न की कुण्डली में भी गुरु द्वितीय तथा तृतीय केन्द्र स्थानों अर्थात् चतुर्थेश तथा सप्तमेश होने के कारण केन्द्राधिपत्य दोष से पीड़ित होते हैं। धनु लग्न की कुण्डली में लग्नेश तथा चतुर्थेश होने के कारण गुरु को यह दोष प्राप्त होता है जबकि मीन लग्न की जन्मकुण्डली में गुरु को यह दोष दशमेश तथा लग्नेश होने के कारण प्राप्त होता है। उपरोक्त परिस्थितियों में हम पाते हैं कि बृहस्पति की एक राशि यदि केन्द्र स्थान में पड़ती है, तो उसकी दूसरी राशि भी केन्द्र स्थान में पड़ जाती है। स्पष्ट है कि अपनी दोनों राशियों के केन्द्र स्थान में पड़ जाने के कारण बृहस्पति उस जातक को शुभ फल देने में असमर्थ हो जाते हैं।

शुक्र- शुक्र के सन्दर्भ में जब हम केन्द्राधिपत्य दोष के सन्दर्भ में विचार करते हैं तो पाते हैं कि कुल बारह लग्नों में से आठ लग्न ऐसे हैं, जिनमें शुक्र केन्द्रेश होते हैं और उन्हें केन्द्राधिपत्य दोष प्राप्त होता है। ये लग्न हैं- मेष, वृष, कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर और कुम्भ। मेष लग्न की कुण्डली में शुक्र की राशि तुला तृतीय केन्द्र स्थान (सप्तम भाव) में रहती है और इसकी दूसरी राशि द्वितीय भाव में रहती है। वृष लग्न में शुक्र लग्नेश (प्रथम केन्द्रेश) और षष्ठेश होते हैं। कर्क लग्न में शुक्र द्वितीय केन्द्र स्थान (चतुर्थभाव) तथा एकादश भाव के अधिपति होते हैं। सिंह लग्न में शुक्र चतुर्थ केन्द्र स्थान (दशम भाव) तथा तृतीय स्थान के स्वामी होते हैं। तुला लग्न में शुक्र प्रथम केन्द्र स्थान (लग्न भाव) तथा अष्टम भाव के स्वामी होते हैं। वृश्चिक लग्न में शुक्र तृतीय केन्द्र स्थान (सप्तम भाव) तथा द्वादश भाव के अधिपति रहते हैं। मकर लग्न में शुक्र चतुर्थ केन्द्र स्थान के स्वामी तथा पञ्चम भाव (त्रिकोण) के स्वामी होते हैं। कुम्भ लग्न में भी शुक्र द्वितीय केन्द्र स्थान के स्वामी होने के साथ-साथ नवम भाव (त्रित्रिकोण) के स्वामी होते हैं। ध्यातव्य है कि शुक्र के केन्द्रेश होने की आठ संभावनाओं में से छः परिस्थितियाँ ऐसी बनती हैं, जबकि शुक्र केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिक (3,8,12) स्थानों अथवा त्रिषडाय (3,6,11) स्थानों के भी अधिपति होते हैं। अभिप्राय यह है कि जहाँ गुरु को केन्द्राधिपत्य दोष लग्न की परिस्थिति में उनकी दूसरी राशि भी केन्द्र स्थानों में ही पड़ती है, इस कारण वे अपना शुभ फल देने में असमर्थ हो जाते हैं, परन्तु उनमें अशुभ फल देने की प्रवृत्ति का अभाव रहता है। वहीं दूसरी तरफ शुक्र के केन्द्राधिपति होने की परिस्थिति में 75% ऐसे अवसर होते हैं जब शुक्र की दूसरी राशि पाप स्थानों[13] (त्रिक, त्रिषडाय) में पड़ती है। महर्षि पराशर ने 2,3,6,8,11,12 भावों को क्रूर और अशुभ संज्ञक माना है।[14] जिसके कारण शुक्र शुभ फल देने में समर्थ तो नहीं ही रहते हैं, परन्तु उनमें अशुभ फल देने की संभावना अवश्य व्याप्त हो जाती है। बारह जन्म लग्नों में से जहाँ गुरु के केन्द्राधिपित होने की संभावना 33.33% होती है, वहीं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष से पीड़ित होने की संभावना 66.66% रहती है। यद्यपि गुरु तथा शुक्र के शुभत्व की तुलना की जाए तो गुरु अवश्य श्रेष्ठ हैं, परन्तु केन्द्राधिपत्य दोष के बलाबल निर्धारण प्रसङ्ग में शुक्र को ही अधिक दोष होता है, यह मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

संदर्भ

1. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्; 8/33
2. लोमशसंहिता; 6/106
3. कृष्णीयम्; 3/13
4. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्; 42/28
5. शिवजातक, श्लो.13
6. लघुपाराशरी; 2/7
7. शम्भुहोराप्रकाश; 2/6
8. लोमशसंहिता; 6/106
9. सारावली; 4/9
10. लघुपाराशर; 2/10
11. वही; 2/11
12. उत्तरकालामृतम्; 38-41, 42-45
13. सर्वार्थचिंतामणि; 1/46
14. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्; 33/37